IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

स्वामी विवेकानंद के चिंतन में कर्मयोग:

1Pradeep Kumar, 2Professer Sanjay Kumar Singh

1 Research Scholar, 2 Professor,(I.O.P Vrindavan)

1 Dr.B.R. Ambedkar University Agra,

2 Dr.B.R. Ambedkar University Agra

प्रस्तावना

- स्वामी विवेकानंद दुनिया के उन महान लोगों में से एक हैं जिन्होंने अपने धार्मिक विचारों और उत्कृष्ट कर्मों से पूरे मानव जाति से प्रभावित किया है। उनके चिंतन के केंद्र में धर्म सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने पहली बार धर्म को विज्ञान के सम्मुख प्रमाणिक विषय के रूप में रखा। वह कहते हैं कि धर्म अंधविश्वास नहीं है। यह भी अनुभव का विषय है। धर्म का कार्य हमारी दिव्यता को अनुभव करiना है। वह विधि या प्रक्रिया जो हमारे वास्तविक स्वरूप को अनुभव करi दे -वह धर्म है। जिस प्रकार विज्ञान में प्रयोग के द्वारा हम किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रकार धर्म के क्षेत्र में भी हम धर्म को जीवन में प्रयोग कर धार्मिक अनुभव को प्राप्त करते हैं। यदि कोई धर्म, धार्मिक अनुभव को नहीं प्रदान कर पा रहा है तो विवेकानंद की दृष्टि में वह धर्म नहीं है, वह केवल मान्यता है- अंधविश्वास है। अहम् ब्रह्मास्मि जैसे महा वाक्य इस बात के प्रमाण है कि ऋषियों ने आत्म साक्षात्कार और तत्व साक्षात्कार किया है। दुनिया के सभी धर्म ने यह प्रमाण दिया है कि उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया है ।भारत के धार्मिक परंपरा में आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर प्राप्ति के लिए अनेक विधियां हैं, जिन्हें हम सैद्धांतिक रूप से चार भागों में बांट सकते हैं- ज्ञान योग, भक्ति योग ,कर्म योग और राज योग। यह चारों मार्ग हमें धर्म का अथवा हमारी आत्मा का अनुभव करiने वाले मार्ग हैं। प्रस्तुत लेख में स्वामी विवेकानंद द्वारा कर्म योग के माध्यम से हम कैसे अपने दिव्य स्वरुप को जानकर जीवन के परम लक्ष्य शाश्वत आनंद को प्राप्त कर सकते हैं, इसका वर्णन है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार कर्मयोग आत्मानुभूति तथा जगत कल्याण दोनों का मार्ग प्रदान करता है। इसलिए कर्म योग को हम पूर्ण धर्म कह सकते हैं। स्वामी विवेकानंद धर्म को पूजा -पाठ मंत्र -जाप ,अनुष्ठान और कुछ परंपराओं के पालन तक सीमित नहीं करते। उनका कहना है की कर्मयोग, धर्म का वह स्वरूप है, जिसके द्वारा हम मानवता की सेवा और ईश्वर की प्राप्ति, दोनों साथ-साथ कर सकते हैं। स्वामी विवेकानंद कर्म योग की धार्मिक ,वैज्ञानिक और व्यवहारिक व्याख्या प्रस्तुत कर धर्म को मानवता की सेवा के लिए प्रेरित करते हैं। उनका जीवन स्वयं कर्मयोग का जीवंत उदाहरण है।

महत्वपूर्ण शब्द: निष्काम कर्म, दिव्यता की अनुभूति, मानवता, मानव सेवा.

भारतीय दार्शनिक और धार्मिक परंपरा में आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर प्राप्ति को अंतिम पुरुषार्थ माना जाता है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी दार्शनिक परंपराओं ने यह स्वीकार किया है, कि जब तक शरीर है, तब तक हम दुख और सुख रुपी बंधन में है। शरीर के बंधन से मुक्त होने के लिए अथवा अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए विभिन्न धार्मिक परंपराओं ने अलग-अलग मार्ग बताए हैं। स्वामी विवेकानंद भारत के सभी धर्म का लक्ष्य आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर साक्षात्कार बताते हैं। स्वामी जी कहते हैं दुनिया के जितने भी धर्म है वह सब एक ही लक्ष्य की ओर जाते हैं -वह लक्ष्य है, अनंत और शाश्वत आनंद स्वरूप परमात्मा। मार्ग अलग-अलग है लेकिन गंतव्य एक ही है। क्योंकि सभी धर्म का लक्ष्य एक ही है, इसलिए सभी धर्म मौलिक रूप से एक ही है।

विवेकानंद के शब्दों में- "धर्म मनुष्य में निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति है " ।(1) वह कहते हैं कि मनुष्य भौतिक जड़ पदार्थों की तरह क्षणिक नहीं है। शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार -यह सब जड़ है ,लेकिन मनुष्य तात्विक रूप में दिव्य है। इसका अर्थ है- वह शुद्ध चैतन्य, शाश्वत तत्व है, जिसका न कभी जन्म होता है, और न कभी मृत्यु होती है। वह भौतिक पदार्थों की तरह उत्पन्न और नष्ट होने वाला नहीं है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वह ईश्वर का अंश है ।अद्वैतवाद की भाषा में वह स्वयं ही ब्रह्म स्वरुप है। अपने को ईश्वर का अंश जान लेना या अपने ब्रह्म स्वरूप को जान लेना ही जीवन का लक्ष्य है। स्वामी जी कहते हैं इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दुनिया के सारे धर्म का जन्म हुआ है। उनकी विधियां अलग है, परंतु लक्ष्य सबका एक ही हैI

भारत की धार्मिक परंपरा में आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर प्राप्ति के अनेक मार्ग है। इन सभी मार्गों को हम चार भागों में बांट सकते हैं। ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग, कर्म मार्ग और योग मार्ग। स्वामी विवेकानंद इन्हें ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और राजयोग के रूप में प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत लेख में कर्मयोग के दार्शनिक और व्यावहारिक पक्ष का स्वामी जी की दृष्टि से विश्लेषण किया जाएगा, साथ में यह भी देखने का प्रयास होगा कि आधुनिक युग के मनुष्यों के लिए कर्मयोग किस प्रकार उनके धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है? कर्मयोग से किस प्रकार मनुष्य अपनी दिव्यता का बोध करते हुए अपना और मानव समाज का कल्याण कर सकता है ?

स्वामी विवेकानंद कहते हैं –"धर्म न बातों में है ना सिद्धांतों में, या मतो में चाहे वह कितने ही सुंदर क्यों ना हो। धर्म तो अनुभूति का नाम है – स्वयं परम तत्व का अनुभव करके बदल जाना। यह सुन लेने या मन लेने की चीज नहीं,बल्कि होने और बनने की प्रक्रिया है।"(2) स्पष्ट है कि विवेकानंद के लिए धर्म केवल मान्यता नहीं है ,धर्म जीवंत अनुभूति है। जब तक हमारी मान्यता हमारे अनुभव में न आ जाए तब तक वह अंध- मानता है। जब भी कोई धार्मिक होगा वह भीतर से रूपांतरित होना शुरू हो जाता है। उसके भीतर कुछ परिवर्तन शुरू हो जाते हैं, जैसे -उसमें दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति जैसे गुण स्वाभाविक रूप से विकसित होने लगते हैं। ऐसा नहीं है कि कोई व्यक्ति धार्मिक भी हो और मानवता के लिए विनाशकारी भी। धार्मिक व्यक्ति की चेतना मानवीय दुर्बलताओं से ऊपर उठने लगती है। वह देवत्व की ओर बढ़ने लगता है। इसका अर्थ यह है कि उसमें कुछ ऐसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं जो मानवता के प्रति सकारात्मक और सहयोगपूर्ण होते हैं। वह विनाश नहीं सर्जन और सेवा की ओर बढ़ने लगता है। विवेकानंद कहते हैं –"धर्म व विचार है जो पशु को मनुष्य तक और मनुष्य को परमात्मा तक उठाता है "।(3) इसका अर्थ हुआ धार्मिक मनुष्य धर्म का अनुपालन करते हुए मनुष्य ईश्वर से एक होने लगता है । उसे अपनी दिव्यता का बोध होने लगता है। स्पष्ट है कि विवेकानंद धर्म को आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर साक्षात्कार से जोड़ते हैं।अब हमें यह समझना है कि हमारे कर्म कैसे हो कि हम कर्म के माध्यम से आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर साक्षात्कार कर सकते हैं ? क्या हमारे दैनिक जीवन के 'कर्म' भी 'धर्म' बन सकते हैं ? क्या 'कर्म ' से हम आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं ? कर्मयोग में स्वामी विवेकानंद कर्म के इसी रहस्य को आधुनिक युग के अनुसार स्पष्ट करते हैं।

भारतीय धर्म शास्त्रों के अनुसार जब हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कोई कर्म करते हैं तो वह संस्कार बन कर तत्काल अथवा कुछ समय पश्चात फल प्रदान करता है। यदि हम इच्छाओं और वासनाओं से प्रेरित होकर कर्म करेंगे तो शुभ कर्म के परिणाम सुख के रूप में मिलते हैं और अशुभ कर्म के परिणाम दुख के रूप में मिलते हैं। यह नियम कर्म सिद्धांत कहलाता है। कर्म और फल – यह दोनों बीज और वृक्ष के समान हैं। जैसे बीज से वृक्ष बनता है और वृक्ष से बीज बनता है। ठीक इसी प्रकार कर्म और उसके फल का चक्र चलता रहता है। कर्म के फल को प्राप्त करने के लिए हमें बार-बार जन्म लेना पड़ता है। भारतीय धर्म शास्त्रों में जन्म और पुनर्जन्म को दुखद माना गया है। क्योंकि शरीर जब तक रहता है, तब तक शरीर तरह-तरह के दुखों को प्राप्त करता है। जब तक हम इंद्रियों और वासनाओं के सुख के लिए कर्म करते रहेंगे तब तक हमारा पुनर्जन्म होता रहेगा। प्रश्न उठता है कि कैसे हम कर्मों के बंधन से अपने को मुक्त कर सकते हैं ? गीता में श्री कृष्ण ने कहा यदि कर्म को निष्काम भाव से किया जाए तो वह कर्म बंधन में नहीं डालता। ऐसा कर्म न तो सुख देता है और नहीं दुख देता है, बल्कि ऐसे कामना रहित कर्म ईश्वर को अर्पित हो जाते हैं। ईश्वर को अर्पित किया हुआ कर्म उपासना बन जाता है। ईश्वर को अर्पित किया हुआ करो संस्कार नहीं बना पाते। जब कर्म के संस्कार बंद हो जाते हैं, तब हमारी आत्मा स्वतंत्रता का अनुभव करती है ,तथा ईश्वर से एकता का बोध होने लगता है। यह अवस्था इंद्रियों के सभी प्रकार के सुखों से विलक्षण और शाश्वत है। जब हम इच्छाओं और वासनाओं की पूर्ति के लिए कर्म करते हैं तो उससे हमें इंद्रियों के सुख मिलते हैं, जो क्षणिक होते हैं। लेकिन निष्काम कर्म से हमारे संस्कार नष्ट होते हैं और आत्मा निर्मल होने लगती है I क्योंकि आत्मा आनंद स्वरूप है इसलिए हमें आनंद बोध होता है। कर्म का यही रहस्य है कि यदि निष्काम भाव से किया जाए तो उसके संस्कार आत्मा पर नहीं पड़ते। धीरे-धीरे आत्मा स्वतंत्र होने लगती है ,और अंत में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लेती है। स्वामी जी कहते हैं –"कर्मयोग उस स्वतंत्रता को निस्वार्थ कार्यों के माध्यम से प्राप्त करने का उपाय है, जो समस्त मानव प्रकृति का लक्ष्य है।"(4)इसका अर्थ है कि सभी व्यक्ति कर्म- योग के माध्यम से पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त कर सदैव के लिए दुखों से मुक्त हो सकते हैं।

कर्म योग का दार्शनिक आधार :

विवेकानंद कहते हैं कि यह संसार ईश्वर की अभिव्यक्ति है। विवेकानंद अद्वैतवाद के उस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं कि परमात्मा के अतिरिक्त अन्य दूसरा कुछ भी नहीं है। एक ही तत्व अनेक रूप में प्रकट हो रहा है।अद्वैतवाद कहता है कि यह सृष्टि ब्रह्म का विवर्त है। जबकि ईश्वरवादी परंपराओं में कहा गया कि यह संसार ईश्वर की लीला है। संख्य और योग दर्शन में इसे प्रकृति की अभिव्यक्ति माना गया। बुद्ध और महावीर स्वामी ईश्वर को न मानते हुए भी कर्म- सिद्धांत को पूरी तरह मान्यता प्रदान करते हैं , साथ ही साथ मनुष्य के सर्वोच्च मूल्य निर्वाण अथवा कैवल्य को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार भारत के सभी धार्मिक परंपराओं में कर्म- सिद्धांत मान्य है। भारत में सभी धार्मिक मत स्वीकार करते हैं कि कर्मों में आसक्ति ही बंधन का कारण है। यदि बिना स्वार्थ के जीवो के कल्याण के लिए कर्म किए जाएं तो वह कर्म संस्कार नहीं बनते ,क्योंकि इसमें कोई आशक्ति नहीं है, और जब संस्कार नहीं बनते तब कर्म का फल भी नहीं मिलता। इसका परिणाम होता है- आत्मा की स्वतंत्रता। आत्मा कर्मों के बोझ से मुक्त होने लगती है। उसका वास्तविक निर्मल स्वरूप प्रकट होने लगता है ,और अंत में पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त कर वह सदैव के लिए मुक्त हो जाती है। स्वामी विवेकानंद अद्वैतवाद के दार्शनिक सिद्धांत में उपयुक्त सभी मतों को समाहित कर देते हैं। विज्ञान और तर्क अद्वैतवाद के सिद्धांतों की पुष्टि करता है। आधुनिक विज्ञान यह प्रमाणित कर चुका है कि संसार की जितनी भी वस्तुएं हैं वह द्रव्य और ऊर्जा से निर्मित है। द्रव्य और ऊर्जा भी एक दूसरे से पूरी तरह भिन्न नहीं है, बल्कि एक दूसरे में रूपांतरित होते रहते हैं। इस प्रकार यह जगत एक ही तत्व का विस्तार है । विवेकानंद व्यावहारिक जगत में इसी एक तत्ववाद को ध्यान में रखते हुए अपने धार्मिक विचारों को प्रस्तुत करते

हैं ।उनका कहना है- एक ईश्वर ही अनेक जीवों के रूप में व्यक्त हो रहा है । इसका अर्थ यह हुआ कि हम सभी ईश्वर के ही रूप है, इसलिए अपने मूल स्वरूप में एक दूसरे से अलग नहीं है । हम सभी अपने वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण अपने को दूसरे जीव से अलग समझ रहे हैं । हम स्वार्थ में सीमित रहने के कारण अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पा रहे हैं ।यदि हम उस ईश्वर को जानना चाहते हैं तो हमें स्वार्थ की सीमा से ऊपर उठना पड़ेगा । अपने 'स्व' का विस्तार करना पड़ेगा । इसके लिए हमें संकीर्णता छोड़नी पड़ेगी । विवेकानंद की दृष्टि में कर्मयोग की साधना से हमारे 'स्व' का विस्तार होता है और हम ईश्वर से जुड़ जाते है । ईश्वर- जो हमारे आसपास अलग-अलग रूपों में जीव के रूप में है -की निस्वार्थ भाव से सेवा करना पड़ेगा । कर्म के माध्यम से ईश्वर से जुड़ने का यही सबसे सरल और मार्ग है । कर्म का रहस्य यही है कि यदि स्वार्थ भाव से किया जाए तो वह बंधन बन जाता है और उन्हें निष्काम भाव से किया जाए तो ईश्वर की उपासना बन जाता है । यही निष्काम कर्म हमें ईश्वर से जोड़ देता है ।

कर्म योग पर चलने वालों के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह होता है कि उन्हें कैसे पता चले कि कौन सा कर्म करना चाहिए और कौन सा कर्म नहीं करना चाहिए ? उसके उत्तर में स्वामी जी कहते हैं- जिस कर्म से हम स्वयं को संकीर्णता – "मैं "और "मेरा की सीमा से बाहर निकलते हैं, वह नैतिक है और जो स्वार्थ को बढ़ाता है वह अनैतिक । इसका अर्थ यह हुआ कि अपने इच्छाओं और वासनाओं की पूर्ति के लिए यदि हम कर्म करते हैं तो वह धार्मिक कर्म नहीं होगा और यदि हम संसार के लिए कर्म करते हैं तो वह'मैं'और 'मेरा 'की सीमा से बाहर होगा और ऐसा ही कर धार्मिक होगा । यही कर्म करने योग्य है । यही कर्म निष्काम कर्म की श्रेणी में आता है। इसे हम एक उदाहरण से समझते हैं- जैसे मैं या तो अपने सुखों के लिए कर्म करता हूं या अपने परिवार के सुखों के लिए कर्म करता हूं । पहली स्थिति में मैं अपने तक सीमित हूं ,तथा दूसरी स्थिति में मैं अपने को थोड़ा विस्तार देता हूं । अपने को अपने माता-पिता, पत्नी और बच्चों में देखना शुरू कर देता हूं । स्पष्ट है कि दूसरी स्थिति में मैं से हटकर 'मेरा' परिवार आ गया । मेरी चेतना का दायरा थोड़ा बढ़ गया । अब मैं थोड़ा और आगे बढ़ता हूं और अपने मित्रों, संबंधियों और अपने समाज के लोगों के लिए भी सोचना शुरू कर देता हूं । उनके लिए कर्म करना अपना दायित्व समझता हूं, तो मेरी चेतना और भी विस्तृत हो जाती है । मैं अपने अतिरिक्त अपने परिवार में ,अपने सगे संबंधियों में और अपने समाज के लोगों मे अपने को विस्तृत पाता हूं । जैसे-जैसे मैं अपने को विस्तृत करता हूं मेरी स्वतंत्रता और आनंद में वृद्धि होती है । उनके लिए कर्म करके मुझे सुख मिलता है । यह स्थिति भी "मैं "से "मेरे "की तरफ है । अभी मुझे और आगे बढ़ना है। पूर्ण निष्कामता तब आएगी जब "मैं" और "मेरा" की सीमा टूट जाए, और समस्त संसार हमारा कर्म क्षेत्र बन जाए । बिना किसी भेदभाव के संसार के सभी जीवो के लिए हमारे कर्म होने लगे । जब ऐसी स्थिति आती है तब अपनी आत्मा अनंत से जुड़ जाती है। क्योंकि सभी जीव ईश्वर के स्वरूप है । और सभी जीवों से जुड़ते ही ईश्वर से अपनी आत्मा की एकता का अनुभव होता है । विवेकानंद कहते हैं-" कर्म योगी को सतत कर्म सील होना चाहिए, किंतु कर्म करते हुए अपने चित् वृत्त को उसमें आसक्त नहीं होने देना चाहिए ।"(5) कर्म योग का यही रहस्य कि इसमें अपना और संसार दोनों का कल्याण है । विवेकानंद कहते हैं जब मनुष्य पूर्ण निस्वार्थ हो जाता है ,तब उसमें व्यक्तिगत संकीर्णता नहीं रहती- वह अनंत विस्तार को प्राप्त कर लेता है । इस अनंत विस्तार का नाम ही मुक्ति है, स्वतंत्रता है। वह कहते हैं कि "कर्म का रहस्य ही यही है कि उसे भगवान की पूजा समझ कर किया जाए ।"(6) ईश्वर की प्राप्ति के लिए हम पूजा- पाठ, मंदिर, अनुष्ठान का सहारा लेते हैं । पर यदि हम संसार को ईश्वर का स्वरूप समझते हैं तो दरिद्र, असहाय ,निर्बल और अशिक्षित मनुष्यों में ईश्वर को क्यों नहीं देख पाते ? विवेकानंद कहते हैं-" जिसे तुम नर समझते हो वह वास्तव में नारायण है, जिन दुर्बलों और दरिद्रों को तुम देखते हो उनमें ही भगवान विराजमान है- पहले उनकी पूजा क्यों नहीं करते ? तुम मंदिर में पानी खोजने जाते हो जबकि गंगा तुम्हारे द्वार पर बह रही है ।"(6) देखा जाए तो विवेकानंद का कर्म योग ईश्वर को मनुष्य में देखकर उनकी सेवा और सहायता करने का दूसरा नाम है । विवेकानंद कहते हैं-" "जिस अवस्था को बुद्ध ने ध्यान द्वारा प्राप्त किया या ईसा ने प्रार्थना द्वारा उसी अवस्था तक मानव निष्काम कर्म द्वारा पहुंच सकता है "(7) सामान्यतया यह धारणा बन चुकी है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए हमें समाज से दूर जाना पड़ेगा । एकांत में किसी कठिन तपस्या और साधना के मार्ग से आत्मज्ञान हो सकता है । विवेकानंद कहते हैं कि ईश्वर हमारी और अन्य जीवों की चेतना में विद्यमान है । उसे जानने का सबसे बड़ा और सरल मार्ग है- जीवों की सेवा । उसमें भी मनुष्य सेवा को वह ईश्वर की सेवा कहते हैं । निस्वार्थ सेवा से चित् शुद्ध होता है और आत्मा का अर्थात ईश्वर का अनुभव होता है । विवेकानंद कहते हैं कि "बुद्ध वस्तुतः कर्मयोगी थे और ईशा एक महान भक्त थे ।" (7) इन दोनों में कोई अंतर नहीं है । आंतरिक चेतना के स्तर पर दोनों समान दोनों है । दोनों में में अपार करुणा ,प्रेम और सेवा भाव है । ।एक भक्ति के माध्यम से और दूसरा कर्म और ध्यान के माध्यम से अपने दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार करता है । दोनों ही एक ही अवस्था में है । दोनों का पूरा जीवन मानव सेवा में व्यतीत होता है । 1897 में प्लेग महामारी के समय विवेकानंद ने स्वास्थ्य खराब होने की बाद भी बहुत सेवा कार्य किया । इस पर कुछ संन्यासियों ने कहा कि हमारा कार्य समाज सेवा नहीं है, हम तो मोक्ष प्राप्ति की मार्ग पर है । सन्यासियों के वक्तव्य पर विवेकानंद ने कहा –"क्या तुम रामकृष्ण के शिवभाव से जीव सेवा के मंत्र को भूल गए? इन पीड़ित नर- नारायण की सेवा करना ही ईश्वर पूजा है । इस आपदा में आगे आओ, और साक्षात जीवित भगवान की सेवा करो ।"(8) आगे उन्होंने कहा-" हम सन्यासी हैं, लोक संग्रह के लिए अपना घर बार छोड़ा है, यदि इन दीन-बंधुओ की सेवा के लिए आश्रम को भी त्यागना पड़े तो पीछे मत हटो ।"(8) विवेकानंद ने लोगों को भी संदेश दिया जो गरीब और असहाय लोगों की कीमत पर अपना वैभवशाली जीवन ही रहे हैं परंतु तीन दीन दुखियों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रहे है । स्वामी जी कहते हैं –"यदि तुम ईश्वर का कोई उपकार करना चाहते हो तो पहले उन दरिद्र नारायण की सेवा करो जो तुम्हारे चारों ओर पीड़ित और भूखे हैं । जब तक करोड़ों लोग भूख और अज्ञान में जी रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही करता हूं जो उनकी कीमत पर शिक्षित होकर उनकी तनिक भी चिंता नहीं करता " ((9) स्वामी जी के इस वक्त से स्पष्ट होता है कि कर्मयोग धर्म का वह उच्चतम आयाम है जो मानवता की सेवा से जुड़ा हुआ है । विवेकानंद का कर्मयोग परंपरागत सन्यास मार्ग को एक नई दिशा देता है । अब जंगल में अथवा एकांत गुफा में बैठकर ध्यान करना ही ईश्वर की साधना नहीं, बल्कि अब समाज के दुख-

दर्द और उसके उत्थान में भागीदार व्यक्ति भक्त और सन्यासी है – चाहे वह डॉक्टर हो, इंजीनियर हो, शिक्षक हो ,राजनेता हो या कुछ और। यदि वह मानवता की सेवा में समर्पित है तो स्वामी विवेकानंद के व्यावहारिक वेदांत की दृष्टि से वह महानतम सन्यासी है। यही विवेकानंद का व्यावहारिक वेदांत है। वेदांत की उच्च शिक्षा को कर्म क्षेत्र में उतारकर उसे धर्म का उच्चतम स्वरूप बताने वाले विवेकानंद ने मानवता की बहुत बड़ी सेवा की है।

इस प्रकार विवेकानंद का निष्काम कर्मयोग धर्म का वह आयाम है जो बिना किसी भेदभाव के अपने कल्याण के साथ ही साथ लोक कल्याण का मार्ग भी प्रस्तुत करता है। यदि हम विवेकानंद के इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं तो इससे सारे धार्मिक मतभेदो और संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानवता के उज्जवल भविष्य का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

References and footnotes

1.Vivekanand, Swami (2013), letters of Swami Vivekananda, Kolkata: Advait Ashram Page. 70

2.Vivekananda Swami,(1895/1991) The Complete Works of Swami Vivekananda Vol.8 Kolkata Advait Ashram(Religion is realisation , not talk or doctrine…. It is being and becoming… It is the whole soul's becoming changed into what it believes that ")

3.Vivekananda Swami,(1959) The Complete Works of Swami Vivekananda Vo.5 P.49 Kolkata Advait Ashram (Religion is the idea which is raising brute unto man, and man unto God. ")

4.Vivekananda Swami(1907) The Complete Works of Swami Vivekananda Vol.1 Kolkata Advait Ashram: Page.108

5.Vivekananda Swami(1907). The Complete Works of Swami Vivekananda Kolkata Advait Ashram. Kolkata Page. 40

6.Mitra.A.(2024) the Unique message of Swami Vivekananda,Vivekananda International foundation. Paras ,42-50

7.Vivekananda Swami(1907), The Complete Works of Swami Vivekananda: Kolkata: Vol.1,Advaita Ashrama. Page. 55

8.Mitra,A.(2024),The Unique Message of Swami Vivekananda, Vivekananda International foundation. Swami Saradananda: Sri Ramakrishna lila- Prasanga-Biography of Ramakrishna, Vol.2

9.Mitra. A. (2024)The Unique Message of Swami Vivekananda, Vivekananda International Foundation: Endnotes 9,10:letters of Swami Vivekananda PP.147,171